मुल्लास
५
पर
धारित

ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

संन्यासी कौन और कैसे हो?

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी प्रकाशन

मूल्य 1.50 पैसे

प्रकाशक - आर्य समा

Scanned with CamScanner

प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले द्वारा सम्पादित

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

के 15 पुष्प और उनके लेखक

भाग	नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	ईश्वर एक है नाम अनेक	प्रो. बुद्धि प्रकाश आर्य	1.50
2.	आदर्श माता-पिता	प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु	1.00
3.	शिक्षा और चरित्र निर्माण	प्रो. भूदेव शास्त्री	1.50
4.	गृहस्थाश्रम का महत्व	आचार्य ओंकार मिश्र प्रणव	1.00
5.	संन्यासी कौन और कैसे हो ?	रासासिंह विद्यावाचस्पति	1.00
6.	राज्य व्यवस्था	प्रो. प्रशान्त कुमार वेदालंकार	1.50
7.	ईश्वर और वेद	डॉ. सूर्यदेव शर्मा एम.ए., एल.टी. डी. लिट्.	1.50
8.	जगत् की उत्पत्ति	डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	1.50
9.	स्वर्ग और नरक कहां है ?	सिद्धान्त भास्कर पं. यशपाल आर्य बन्धु	0.90
10.	चौके चूल्हे में धर्म नहीं है ?	प्रो. देव शर्मा वेदालंकार	0.90
11.	हिन्दू धर्म की निर्बलता	प्रो. भवानी लाल भारतीय	1.00
12.	बौद्ध और जैन मत	पं. मन्जुनाथ शास्त्री	0.90
13.	वेद और ईसाई मत	श्री रामस्वरुप जी रक्षक	0.90
14.	इस्लाम और वैदिक धर्म	डॉ. श्रीराम आर्य	1.00
15.	सत्य का अर्थ तथा प्रकाश	प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले	1.50

विशेष—सभी ट्रैक्ट आर्य जगत् के चोटी के विद्वानों के द्वारा लिखित
त्यमाला का सम्पादन आर्यसमाज

Scanned with CamScanner



सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला:–भाग 5

संन्यासी कौन और कैसे हों

लेखक :

रासासिंह

एम. ए., (हिन्दी व संस्कृत)

पूर्व प्रधानाचार्य, डी.ए.वी. उच्च माध्यमिक विद्यालय, अजमेर



सम्पादक :

दत्तात्रेय वाब्ले

भू. पू. प्रिंसिपल, दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज, अजमेर



प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर

तृतीय संस्करण

शताब्दी वर्ष 1992

प्रतियां 2000

मूल्य 1.50 पैसे

Scanned with CamScanner

हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश

(1)

हमारे गुरु का आशीर्वाद, हमारे ऋषि का अमर विधान ।
मिटाकर जग का विषम विषाद, करेगा वही विश्व कल्याण ।।
इष्ट फल देगा नित्य नवीन, कल्पपादप का पुण्याभास ।
करे वह असत्-विचार-विहीन, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(2)

निगम का आगम का अवतार, भव्य भावों का भूवि भण्डार ।
प्रेम के पथ का पारावार, ज्ञान का गुण का रम्यागार ।।
चमकते जिसमें रत्न अनेक, नित्य प्रति पाते विविध विकास ।
सत्य का सागर बस वह एक, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(3)

विविध पंथों का तामस तौम, भरा था भू पर भ्रम भरपूर ।
अखिल आच्छादित था वर व्योम, न कर सकता था कोई दूर ।।
गगन में हुआ ज्ञान विस्फोट, किया अज्ञान अँधेरा नाश ।
असत पर मारी भारी चोट, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(4)

किया द्रुत खण्ड-खण्ड पाखण्ड, चलाकर तेज तर्क का तीर ।
आक्रमण हुआ प्रभूत प्रचण्च, दम्भगढ़ गिरा सहित प्राचीर ।।
विलखते हैं मतवादी आज, करें कैसे किसकी अब आश ?
असत् पर गिरा गर्ज कर गाज, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(5)

"सूर्य" में रहें रश्मियाँ सात, यहाँ चौदह पूरे उल्लास ।
"सूर्य न करता प्रकाशित रात, सतत यह देता ज्ञान प्रकाश ।।
"सूर्य" पर छाते घन बरसात, ग्रहण में होता भारी ह्रास ।
किन्तु "सत्यार्थ" सदा अभिजात, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

रचियता :
[डॉ. सूर्यदेव शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार एम. ए. डी., लिट्.,]
अजमेर

Scanned with CamScanner

प्रस्तावना

मानव जीवन के सम्बन्ध में जितना गम्भीर दार्शयिक मनन हमारे देश के प्राचीन विचारकों ने किया है, उतना सम्भवतः अन्य किसी देश में अभी तक नहीं हुआ है। मनुष्य के शरीर के बारे में पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने चाहे जितनी खोज की हो किन्तु उसके आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिये अब भी सारा संसार भारत से मार्ग दर्शन की अपेक्षा करता है। मनुष्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य और भौतिक सुखों मे सन्तुष्ट नहीं हो सकता, यह पश्चिमी जगत् में व्याप्त मानसिक अशान्ति से स्पष्ट है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इसीलिये स्वस्थ शरीर के साथ आत्मिक, मानसिक और आध्यात्मिक शान्ति को भी बड़ा महत्त्व दिया है।

व्यक्ति और समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह तथ्य भी बहुत समय पूर्व हमारे विचारकों को मालूम था इसलिये उन्होंने हमारे व्यक्तिगत जीवन के साथ ही समाज में मनुष्य के स्थान और समाज से मनुष्य के सम्बन्ध और उसके प्रति उसके कर्त्तव्यों का भी विवेचन किया है। आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द ने हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन दोनों की आवश्यकता और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश तथा आर्य समाज के अन्तिम पांच नियमों में बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। इतना ही नहीं इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक निश्चित कार्यक्रम की रचना की गई है, जैसा कि हमारी वैदिक आश्रम व्यवस्था से स्पष्ट है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के सम्बन्ध में इस ग्रन्थमाला के तीसरे और चौथे भागों में विचार किया गया है उसका यह पांचवाँ भाग बाकी के दो आश्रम अर्थात् वानप्रस्थ और संन्यास से सम्बन्धित है जिसमें विद्वान् लेखक ने इन दोनों आश्रमों के महत्व और कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला है। ऋषि दयानन्द स्वयं एक आदित्य बाल

Scanned with CamScanner

ब्रह्मचारी और आदर्श संन्यासी थे जिन्होंने मोक्ष प्राप्ति के अपने प्रारम्भिक व्यक्तिगत लक्ष्य और परमानन्द के स्थान में मानव मात्र के कल्याण के लिये संन्यास धारण करके अपना सारा जीवन संसार के उपकार के लिये समर्पित कर दिया और अपने उदाहरण द्वारा अपनी इस मान्यता को कार्यरूप में परिणत कर दिया कि केवल भगवे वस्त्र पहनकर समाज पर बोझ बनकर रहने वाले वास्तव में साधु और संन्यासी नहीं हैं। ऐसे व्यक्तियों को गृहस्थों के परिश्रम से उत्पन्न अन्न ओर वस्त्र भी प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। स्वयं विद्वान् और चरित्रवान् बनकर गृहस्थों को उचित उपदेश और मानव मात्र के उपकार का व्रत लेकर संन्यास लेने वाला व्यक्ति ही वास्तविक रूप में संन्यासी और साधु होने और कहलाने का अधिकारी है।

दयानन्द वाणी

—सम्पादक

लेखक का संक्षिप्त परिचय

इस पुस्तिका के लेखक श्री रासासिंह आर्य समाज के जाने माने विद्वान् लेखक है। पूर्व में आप दयानन्द महाविद्यालय अजमेर में हिन्दी विषय के व्याख्याता रहे हैं और डी. ए. वी. सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालय, अजमेर में प्रधानाचार्य रहे, वर्तमान में सांसद हैं। आप आर्य समाज के कर्मठ, प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति एवं वैदिक सिद्धान्तों के कुशल समीक्षक हैं।

Scanned with CamScanner

संन्यासी कौन और कैसे हों

वानप्रस्थ

कम से कम 25 वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके मानव गृहस्थ बनता है। फिर वानप्रस्थ संन्यासी बनता है। वानप्रस्थ बनने का समय शास्त्रकारों ने दर्शाया है वह है—'सन्तान की भी सन्तान हो जाएं और केश सफेद हो जाएं एवं शरीर में झुर्रियाँ पड़ने लग जाएं तब वानप्रस्थ बनें'।

गार्हस्थ्य का कारोबार पत्रों पर छोड़ कर पत्नी यदि साथ चलना चाहे, उसे साथ लेकर, नहीं तो पुत्रों के पास छोड़कर, वह वन में जाकर बसे।

वहाँ रहकर वह सामान्य रूप से पंच महायज्ञ करे तथा साधारण सात्त्विक आहार का सेवन करे। तड़क-भड़क से दूर रहे तथा प्रतिदिन ईश्वरोपासना में अपना अधिक समय लगाए।

यह आश्रम अगले आश्रम (संन्यासाश्रम) में प्रवेश करने हेतु पूर्व तैयारी का आश्रम है।

प्रतिदिन सद् ग्रन्थों का, वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करे, जितेन्द्रिय रहे तथा जो कोई जन जिज्ञासा भावनावश अध्ययन करने आए उसे पढ़ाए। किसी से वैर विद्वेष न रखे, किसी प्रकार की पार्टीबाजी में न फंसे। किसी से कोई वस्तु अपने उपयोग के लिए न लेवे।

शारीरिक सुख का परित्याग करे तथा सदैव ब्रह्मचर्य का

Scanned with CamScanner

पालन करे। (इस विषय में महात्मा गांधी का जीवन आदर्श हो सकता है, जिन्होंने 37 वर्ष की वय: में अपनी पत्नी को साथ रखते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन किया) किसी वस्तु पर ममत्व न रखते हुए निर्मम होकर रहे। सत्सङ्ग, योगाभ्यास और सुविचार से ज्ञान तथा पवित्रता का पात्र बनना चाहिए।

यदि पूर्ण आयु 100 वर्ष की मान लें तो 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य, 50 वर्ष तक गार्हस्थ्य, 75 वर्ष तक वानप्रस्थ तथा आगे सन्यास का विधान कर सकते हैं परन्तु कोई नियम कठोरता से पालन करना कठिन है। कोई कोई तो 60 वर्ष के पश्चात् भी वानप्रस्थ हो सकेगा तथा 75 वर्ष तक की प्रतीक्षा किये बिना ही संन्यासी भी बन सकेगा। हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने को सन्यासी बनने के योग्य न समझे। अपनी अयोग्यता को मानव आप ही पहचानता है। अत: अयोग्य को भी कभी संन्यासी जैसा सर्वोत्तम आश्रम अंगीकार नहीं करना चाहिए। त्यागी, तपस्वी, जितेन्द्रिय और पूर्ण ज्ञानी ही संन्यासी का अधिकारी है।

जब संन्यास ग्रहण की इच्छा हो जाए उस समय अपनी स्त्री को पुत्रों के पास भेज कर संन्यास ग्रहण करना चाहिए। वानप्रस्थ में तो स्त्री को साथ रखने का नियम है परन्तु संन्यास में साथ नहीं रखना है। यदि उसकी भी इच्छा संन्यास लेने की हो तो वह पृथक् ही ग्रहण करे। पति पत्नी का आत्मिक सम्बन्ध भी वानप्रस्थ तक ही होता है। सन्यासी न किसी का पति होता है न किसी का पिता या और कुछ। मानव धर्म शास्त्रकार ने भी संन्यासी बनने के लिए कहा है—त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् अर्थात् लोगों के संसर्ग में न रह कर परिव्राजक बने।

Scanned with CamScanner

परिव्राजक उसको कहते हैं जो लगातार देशहित के लिए परिभ्रमण करता रहे।

संन्यासी दो प्रकार के होते हैं—पहले प्रकार के संन्यासियों में वे आते हैं जो क्रमशः ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य एवं वानप्रस्थ आश्रमों में होते हुए अन्तिम संन्यासाश्रम में प्रवेश करते हैं। दूसरे प्रकार के वे हैं जो बहुत अधिक शास्त्रज्ञान रखते हुए अटूट वैराग्यवान् होकर ब्रह्मचर्य से सीधे ही संन्यासाश्रम में प्रवेश करते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें गृहस्थाश्रम में रहते हुए अटूट वैराग्य प्राप्त हो जाता है और वहीं से संन्यास दीक्षा लें लेते हैं। इनमें ब्रह्मचर्य से संन्यासी बनना केवल पूर्ण विद्वान् एवं विषय वासना में सर्वथा पृथक् हो और जिसे परोपकार करने की प्रबल इच्छा हो ऐसे व्यक्ति के लिये ही सम्भव है।

कई लोगों का कहना है कि वेदों में संन्यासाश्रम का विधान नहीं है परन्तु यतयः (ऋग्वेद 8.6.18) ब्राह्मणस्य विजानतः (यजुः 40.7) इत्यादि शब्दों से यह जाना जाता है कि वेदों में संन्यास का विधान है।

जिसका मन दुराचार से दूर न हो, जो शान्ति न पाए, जिसने योगाभ्यास आदि न किया हो उसे संन्यास नहीं लेना चाहिये। इसी प्रकार दिखावे के लिए या आडम्बर के लिए या मठ की सम्पत्ति आदि प्राप्त होती है ऐसा समझकर भी संन्यास नहीं लेना चाहिए। ऐसा संन्यास निरर्थक है।

संन्यासी के कर्त्तव्य :--

संन्यासी को बुद्धिमत्ता के साथ वाणी और मन को वश में करना चाहिए, उन्हें ज्ञान प्राप्ति में और आत्मज्ञान में लगाना चाहिए। आत्मज्ञान प्राप्त कर उन्हें परमात्मा की प्राप्ति में

Scanned with CamScanner

लगाए तथा ज्ञान एवं विज्ञान को शान्त आत्मा में स्थिर करना चाहिए।

संन्यासी किनका संग न करे ?

जो लोग अविद्या और अन्ध विश्वास में लीन हों, अपने को महान् पण्डित मानकर अभिमान करते हों ऐसे लोगों के साथ रहना ऐसा ही है जैसा कि अन्धे के पीछे चल कर पतन के गर्त में गिरना। इसी तरह केवल कर्म काण्ड को ही सब कुछ मानने वाले भी यथार्थ को न जानकर लोगों को भ्रमित करते हैं। कुछ लोग किसी विशिष्ठ परिस्थिति में पीड़ित होकर क्षणिक वैराग्य में आकर संन्यास लेते हैं और फिर दूसरे को ठगते हैं यह भी उचित नहीं है।

संन्यास का फल

परमेश्वर प्रतिपादित वेद मन्त्रों के अर्थों को भली प्रकार जानकर योगपूर्वक संन्यासी अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेता है और फिर शरीर छूटने पर मुक्ति का सुख पा लेता है। यद्यपि शरीर जब तक रहता है तब तक मानव सुख और दुःख से छूट नहीं सकता, फिर भी परमात्मा की प्राप्ति होने पर शरीर छूटने के पश्चात् वह मुक्ति को प्राप्त होता है।

संसार में प्रतिष्ठा पाने की, धन की एवं पुत्र की प्राप्ति ये तीन इच्छाएँ (एषणाएँ) मानव सुलभ हैं। संन्यासी इन तीनों से पृथक् रहकर भिक्षुक एवं अकिंचन बनकर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर हो जाता है।

मानव धर्म सूत्रकार मनु महाराज के अनुसार प्राणिमात्र को अभय प्रदान कर, घर से निकलकर जो ब्रह्मवादी

Scanned with CamScanner

अर्थात् परमेश्वर से दिए हुए वेदोक्त धर्मादि विद्याओं का उपदेश करने वाला हो ऐसे संन्यासी को मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है।

संन्यासियों के धर्म

पक्षपात रहित होकर न्यायाचरण करते हुए असत्य परित्याग एवं सत्यग्रहण, ईश्वराज्ञापालन, परोपकार इत्यादि धर्म सब आश्रमियों की तरह संन्यासी के धर्म हैं परन्तु संन्यासी के विशिष्टि धर्म निम्नाँकित है :—

नीचे दृष्टि करके चले, वस्त्र से छानकर जल पिये, सत्य बोले, सत्य ग्रहण और असत्य परित्याग के लिए सर्वदा उद्यत हो। सदधर्म का उपदेश देना अपने जीवन का उद्देश्य बनाए और स्वयं भी तदनुसार आचरण करे।

रंगे हुए गेरूए वस्त्र धारण करे और सब प्राणियों के लिए अभयदान देकर सर्वत्र विचरण करे। राग, द्वेष, पक्षपात आदि दोषों को छोड़कर निर्वैर भाव से मोक्ष मार्ग का अनुगमन करे।

प्रशंसा से फूले नहीं निन्दा से विचलित न हो। केवल रंगे हुए वस्त्र एवं दण्डकमण्डलु का धारण—इन्हीं चिन्हों के कारण कोई भी संन्यासी नहीं बनता। संन्यासी का मुख्य कर्त्तव्य तो मानवों के लिए सत्योपदेश करना, सभी प्राणियों को अभयदान देना एवं विद्या का प्रचार करना ही है। प्राणायाम, योगाभ्यास आदि नित्य किया करे। क्योंकि केवल नाम लेने मात्र से निर्मली का फल जल को शुद्ध नहीं करता, उसके प्रयोग से ही शुद्धि होती है। ऐसे ही केवल नाम मात्र के योगाभ्यास के उपदेश से सन्यासी का उपदेश सफल नहीं

Scanned with CamScanner

होता अपितु स्वयं योगाभ्यास करें और दूसरों को करने का उपदेश दे तभी वह उपदेश सार्थक होगा।

(धृति) सदा धैर्य धारण करना, (क्षमा) मानापमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करना (दम) मन को अधर्म विचारों से हटाकर सदा धर्म के विचारों में प्रवृत्त रखना (अस्तेय) किसी प्रकार की चोरी न करना अर्थात् छलकपट विश्वासघात आदि के द्वारा पर पदार्थ ग्रहण न करना (शौच) मन वचन और शरीर को सदव शुद्ध रखना (इन्द्रिय निग्रह) इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोककर सदा धर्म के कार्यों में प्रवृत्त रखना (धीः) मादक द्रव्य आलस्य आदि छोड़कर श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करना, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास आदि से बुद्धि को बढ़ाना (विद्या) पृथ्वी से लेकर परमात्मा तक के पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उनसे उपकार लेना (सत्य) आत्मा, मन, वचन और कर्म में एक जैसा व्यवहार करना तथा (अक्रोध) कभी गुस्सा न करना—यह दश लक्षण वाला धर्म कहलाता है इसका पालन प्रत्येक को करना चाहिए।

सब प्रकार के सङ्गदोषों को छोड़ हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से छूटकर गृहस्थादि सभी आश्रमियों को सत्य व्यवहार सिखाना एवं अधर्म व्यवहारों से छुड़ाना यह संन्यासियों का परम कर्त्तव्य है।

संन्यास—ग्रहण का अधिकार

संन्यास लेने का अधिकार मानव-मात्र को नहीं है, वह तो केवल ब्रह्मण को है। आजकल विभिन्न लोग शर्मा, ओझा, झा, मिश्र, उपाध्याय, आचार्य आदि लगाकर शास्त्र ज्ञान शून्य

Scanned with CamScanner

होते हुए भी ब्राह्मण नामधारी बनकर विचरण करते हैं, उन्हें संन्यास लेने का अधिकार सर्वथा नहीं है। जो कहीं भी जन्म लेकर अपने व्यवहारों से सत्कर्मों से परोपकार निरत रहकर शास्त्र चिन्तन में लगे रहते हैं वे ही ब्राह्मण हैं। ऐसे ब्राह्मण ही संन्यास के अधिकारी हैं। जो ऐसे नहीं हैं और कपड़े रंगकर नामधारी संन्यासी बनते हैं, वे समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं। हमारे देश में ऐसे लाखों नामधारी संन्यासी हैं जो किसी का उपकार कुछ भी न करें और न कर सकें, केवल पर-पिण्डोपजीवी बन कर गृहस्थों को ठगते रहते हैं और बहुत बार अनाचार के भी कारण बनते हैं तथा व्यभिचारादि दोषों के भी भागी बनते हैं।

संन्यासी की आवश्यकता क्या है ?

शरीर में जैसे सिर सर्वोपरि है वैसे ही आश्रमों में सर्वोत्तम है—संन्यास। संन्यासी पक्षपात रहित होकर विद्या और धर्म की उन्नति में लगा रहता है। दूसरे आश्रमों में ब्रह्मचर्य में विद्या ग्रहण, गृहस्थ में गृहकृत्य और वानप्रस्थ में तपश्चर्यादि में संलग्न होने के कारण समय अधिक उपलब्ध नहीं होता। संन्यासाश्रम में उपर्युक्त बातें न होने के कारण यथेष्ट समय प्राप्त होता है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य से ही अत्यधिक वैराग्यवान् होकर सीधे संन्यासाश्रम में प्रवेश करता है, उसे क्रमशः संन्यासी बनने वाले की अपेक्षा अधिक समय मिलता है। परन्तु सीधे संन्यासी बनना बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि इन्द्रिय समूह पर विजय पाना किसी असाधारण व्यक्ति का ही कार्य है।

Scanned with CamScanner

यह सन्देह पैदा होता है कि यदि सभी लोग सीधे ब्रह्मचर्य से संन्यास ग्रहण करते हैं, तो गृहस्थाश्रम उजड़ जाएगा, उसके परिणाम स्वरूप सन्तानोत्पति न होने से दुनियाँ का विनाश ही हो जाएगा। परन्तु जैसा कि ऊपर कह आये हैं अतः हर एक व्यक्ति सीधे संन्यासी होने की बात सोच भी नहीं सकेगा। इन्द्रियसमूह का निग्रह सरल कार्य नहीं है।

क्या संन्यासी निष्क्रिय हो ?

कुछ संन्यासियों का तर्क है कि गृहस्थों से अन्न वस्त्र ग्रहण करके आनन्द से इहें, उनका कोई कर्त्तव्य नहीं है। अविद्यारूपी संसार से कौन माथापच्ची करे ? ब्रह्म के सिवा बाकी सब झूठ है। जगत् के व्यवहार कल्पित एवं झूठ हैं और ऐसे झूठे व्यवहारों में फंसना बुद्धिमानों का काम नहीं। उनका यह तर्क असार है क्योंकि सत्य व्यवहार झूठ नहीं हुआ करते। मनु महाराज ने भी कहा है वैदिकश्चैव कर्मभिः वेदोक्त धर्मयुक्त सत्कर्म अवश्य ही करने चाहिए। सारे कर्म छोड़ने का अभिप्राय हुआ खाना पीना, सोना जागना एवं सांस लेना भी छोड़ना पड़ेगा, जो सर्वथा असम्भव है। अतः संन्यासी कार्य न करे, यह कहना नितान्त अनुचित है। संन्यासी गृहस्थाश्रमियों से अन्न कस्त्र ग्रहण करते हैं उनका कुछ प्रत्युपकार करना भी संन्यासी का कर्त्तव्य है। यदि यह प्रत्युपकार न करे, तो संन्यासी महापापी बन जाए। जैसे आंखों का प्रयोजन देखना है तथा कानों का सुनना है ऐसे ही संन्यासी भी अपने ज्ञान और अनुभव गृहस्थियों को देता है, वेदादि सत्य-शास्त्रा का विचार-प्रचार करता है यदि न करे तो वह दुनियाँ के लिए भार रूप है। माथापच्ची की बात करने वाले पाप को बढ़ाने वाले होते हैं।

Scanned with CamScanner

संन्यासियों के बारे में प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण

कुछ लोगों का विचार है कि संन्यासी सर्वकर्म विनाशक तथा अग्नि एवं धातु का स्पर्श न करने वाला हो। इसी दृष्टिकोण के वशीभूत होकर संन्यासी के मरने पर दाह कर्म न करके उसे या तो गाड़ते हैं या जल में समाधि देते हैं। यह ठीक नहीं है, क्योंकि ब्रह्म अर्थात् भगवान् में तथा उसकी आज्ञा में सर्वदा बने रहना एवं दुष्कर्मों का त्याग एवं सत्कर्मों का आदान-प्रदान अवश्य ही करना चाहिए।

एक प्रश्न उठता है कि गृहस्थ ही अध्यापन करे एवं उपदेश दे तो काम चलेगा तो फिर संन्यासी बनना क्यों आवश्यक है? संन्यासी के पास अधिक समय रहता है। गार्हस्थ्य के पचड़े में वह नहीं रहता गृहस्थ निष्पक्ष होकर व्यवहार करे, इसकी गुंजाइश भी कम है। कोई बन्धन न रहने के कारण संन्यासी गाँव-गाँव घूमकर उपदेश कर सकता है। गृहस्थ व्यक्ति से यह नहीं बन सकता। अतः संन्यासी का रहना अत्यावश्यक है।

कुछ सुभाषितों में एवं स्मृतियों में संन्यासी के लिए लिखा है—एक रात्रि वसेद् ग्रामे अर्थात् एक गांव में संन्यासी केवल एक रात ही ठहरे अधिक नहीं। यह बात उचित है कि उसे गांव-गांव घूमकर उपदेश करना चाहिए। एक ही स्थान पर अधिक समय ठहरने से मोह के वश में हो सकता है। परन्तु यदि एक स्थान पर रहने से अधिक उपकार हो सकता हो तो उसे रहने में संकोच न करना चाहिए। प्राचीन समय में भी

Scanned with CamScanner

पञ्चशिख आदि संन्यासी लोग जनक के यहाँ वर्षों तक निवास करते रहे हैं।

क्या संन्यासी को धन न दें ?

लघु पाराशर स्मृति (1-51) में लिखा है कि संन्यासी को धन, ब्रह्मचारी को पान एवं चोरों को अभय दान देने वाला नरक को जाता है। हह बात उन्होंने स्वार्थ प्रेरित होकर कही है। क्योंकि पाखण्डियों को डर था कि यदि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारे ऊपर आश्रित न रहकर स्वतन्त्र हो हमारा खण्डन करेंगे, भिक्षादिव्यवहार में हमारे अधीन रहेंगे तो डरते रहेंगे। वास्तव में धन तो मूर्ख और स्वार्थियों को न देकर विद्वान और परोपकारी संन्यासियों को देना चाहिए।

ब्रह्मचर्य से संन्यास कौन लें ?

जो अपनी इन्द्रियों का निग्रह कर सके, विद्वान् हो, विषय वासना के दोषों से अभिज्ञ होकर वीर्य रक्षा के गुणों को जानकर विषयाक्त न हो, उसे ब्रह्मचर्य से ही संन्यास लेना चाहिए। प्राचीन काल में भी पञ्चशिख आदि पुरुष और और गार्गी आदि महिलाओं ने ब्रह्मचर्य से ही संन्यास ग्रहण किया था। हाँ जो अधिकारी न हो वह संन्यास ले, यदि लेगा तो स्वयं भी डूबेगा और दूसरों को भी डूबोएगा।

सम्राट् से परिव्राट् बड़ा है

स्वामी दयानन्द जी ने परिव्राट् अर्थात् संन्यासी को चक्रवर्ती सम्राट से भी बड़ा मानते हुए चाणक्य नीति शास्त्र का वह श्लोक दिया है, जिसमें कहा गया है कि विद्वान् और

Scanned with CamScanner

राजा में समानता नहीं है क्योंकि राजा का मान अपने देश में होता है परन्तु विद्वान् की पूजा सर्वत्र होती है।

वैरागी, गुसाई खाकी आदि संन्यासी नहीं

वैरागी आदि में संन्यासी का एक भी लक्षण नहीं दिखाई देता। एक तो वे वेद विरुद्ध मार्गानुयायी हैं। वेदों से बढ़कर अपने सम्प्रदाय के आचार्यों के बचनों का आदर करते हैं। मिथ्या प्रपञ्च में फंसकर दूसरों को फंसाते हैं। सुधार तो नहीं करते परन्तु अपने स्वार्थ के लिए उनका उनका दरुपयोग करते हैं।

जो स्वयं धर्म पर चले और संसार को चलाएं, इहलोक और परलोक का सुधार करके लोगों को सुख का उपभोग कराएं, ऐसे धर्मात्मा हो संन्यासी और महात्मा होते हैं।

क्या कलियुग में संन्यास वर्जित है ?

अश्वालम्मं गवालम्भं संन्यास पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौपञ्च विवर्जयेत्।।

कहां कलियुग में किन-किन क्रियाओं को वर्जित किया है यह बताते हुए वर्जित क्रियाओं में एक सँन्यास भी है अर्थात् कलियुग में संन्यास नहीं लेना चाहिए। पौराणिक लोग, अक्सर 'नियोग का निषेध कलियुग में किया गया है, यह बताने के लिए इस श्लोक को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह किसी स्मृति का श्लोक तो है नहीं। इस श्लोक के अनुसार कलियुग में संन्यास को निषिद्ध ठहराया है। परन्तु पौराणिकों

Scanned with CamScanner

में संन्यास निषिद्ध होने पर भी लाखों संन्यासी वेषधारी भारत में मिलेंगे । सैकड़ों तो मठाधीश भी हैं जो लाखों की सम्पत्ति का उपयोग करते हैं । यह अलग बात है कि ये लाखों वेषधारी संन्यासी न विद्वान् हैं और न किसी प्रकार का परोपकार ही करते हैं । इनमें लोकैषणा और वित्तैषणा भरपूर है जो संन्यास धर्म के विरुद्ध बात है ।

ऐसे संन्यासियों से कोई लाभ नहीं है ।

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

आचार्य धर्मपाल आर्य

सम्पर्क - 9869128779

Scanned with CamScanner

आर्यसमाज अजमेर द्वारा प्रकाशित साहित्य

शिक्षाविद प्रो. दत्तात्रेय आर्य द्वारा लिखित पुस्तकें

1. देश, धर्म और हिन्दू समाज को आर्यसमाज की देन—मूल्य 0.50 पैसे
2. हमारी राष्ट्रीयता का आधार—मूल्य रु. 1.00
3. विद्यार्थियों के लिए आचार संहिता—मूल्य रु. 1.00
4. दी आर्यसमाज हिन्दू विदाउट हिन्दुइज्म (अंग्रेजी)—विशेष रियायती दर रु. 75.00
5. आर्यसमाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं—मूल्य 50.00 रु.
6. मेरी तीसरी विदेश यात्रा—रु. 6 00
7. द आर्यसमाज (अंग्रेजी)—रु. 2.00

दयानन्द शोधपीठ के प्रकाशन

1. दयानन्द कथा संग्रह—मूल्य रु. 3.00
2. महर्षि दयानन्द : पत्रों के दर्पण में—मूल्य रु. 50.00
3. सार्वभौम वैदिक धर्म—मूल्य रु. 250

अन्य प्रकाशन

1. धर्म शिक्षा (भाग 1 से 11 तक) पूरे सैट का मूल्य रु. 60.00
2. परिचय निर्देशिका (समस्त देश-विदेश की आर्य शिक्षण संस्थाओं का परिचय)—मूल्य रु. 12.00
3. आर्यसमाज (हिन्दी)—मूल्य सजिल्द रु. 20.00 अजिल्द रु. 16.00
   ले. लाला लाजपतराय
4. सांस्कृतिक कार्यक्रम पथ दर्शिका—मूल्य रु. 30.00

Scanned with CamScanner

ओ३म्

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायाकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वाव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति ससझनी चाहिये।

10. सब मनुष्यों को समाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र रहें।

Scanned with CamScanner